3 ग्रामीण क्षेत्र पर शासन चलाना

चित्र 1 - 1765 में रॉबर्ट क्लाइव मुग़ल बादशाह से बिहार और उड़ीसा की दीवानी ग्रहण करते हुए

कंपनी दीवान बन गई

12 अगस्त 1765 को मुग़ल बादशाह ने ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल का दीवान तैनात किया। इस बात की पूरी संभावना है कि यह घटना मुट्ठी भर अंग्रेज़ों और हिंदुस्तानियों की मौजूदगी में रॉबर्ट क्लाइव के तंबू में घटी होगी। लेकिन ऊपर दिए गए चित्र में इस घटना को एक भव्य समारोह के रूप में दिखाया गया है। यह चित्र उस चित्रकार ने बनाया है जिसे रॉबर्ट क्लाइव ने अपने जीवन की यादगार घटनाओं को चित्रित करने का ज़िम्मा सौंपा था। बंगाल की दीवानी हाथ आ जाना अंग्रेज़ों के लिए निश्चय ही एक बड़ी घटना थी।

दीवान के तौर पर कंपनी अपने नियंत्रण वाले भूभाग के आर्थिक मामलों की मुख्य शासक बन गई थी। अब उसे अपनी ज़मीन का शासन चलाने और आमदनी को व्यवस्थित करने का रास्ता ढूँढ़ना था। इसके लिए उसे एक ऐसा रास्ता ढूँढ़ना था जिससे कंपनी के बढ़ते खर्चों को पूरा करने के लिए काफी आमदनी जुटाई जा सके। व्यापारिक कंपनी के नाते उसे यह खयाल भी रखना था कि वह अपनी ज़रूरत की चीज़ें ख़रीदती-बेचती रहे।

समय के साथ कंपनी को यह भी समझ में आने लगा कि उसे सावधानी के साथ आगे बढ़ना होगा। बाहरी ताकत होने की वजह से उसे उन लोगों को भी शांत रखना था जो गाँव-देहात में पहले शासन चला चुके थे और जिनके पास अभी भी काफी ताकत और सम्मान था। ऐसे जो लोग स्थानीय सत्ता में रह चुके थे उन्हें नियंत्रित करना तो ज़रूरी था लेकिन उन्हें खत्म नहीं किया जा सकता था।

यह काम कैसे हो? इस अध्याय में हम देखेंगे कि कंपनी ने ग्रामीण इलाकों को उपनिवेश कैसे बनाया, आय के संसाधन कैसे जुटाए, लोगों के अधिकार किस तरह तय किए और मनमाफ़िक फ़सलों की खेती कैसे करायी?

कंपनी की आमदनी

कंपनी दीवान तो बन गई थी लेकिन अभी भी खुद को एक व्यापारी ही मानती थी। कंपनी भारी-भरकम लगान तो चाहती थी लेकिन उसके आकलन और वसूली की कोई नियमित व्यवस्था करने में हिचकिचा रही थी। उसकी कोशिश यही थी कि वह ज़्यादा से ज़्यादा राजस्व हासिल करे और कम से कम कीमत पर बढ़िया सूती और रेशमी कपड़ा ख़रीदे। इसी कारण, पाँच साल के भीतर बंगाल में कंपनी द्वारा ख़रीदी जाने वाली चीज़ों का कुल मूल्य दोगुना हो चुका था। 1865 से पहले कंपनी ब्रिटेन से सोने और चाँदी का आयात करती थी और इन चीज़ों के बदले सामान ख़रीदती थी। अब बंगाल में इकट्ठा होने वाले पैसे से ही निर्यात के लिए चीज़ें ख़रीदी जा सकती थीं।

जल्दी ही यह ज़ाहिर हो गया कि बंगाल की अर्थव्यवस्था एक गहरे संकट में फँसती जा रही है। कारीगर गाँव छोड़कर भाग रहे थे क्योंकि उन्हें बहुत कम कीमत पर अपनी चीज़ें कंपनी को जबरन बेचनी पड़ती थीं। किसान अपना लगान नहीं चुका पा रहे थे। कारीगरों का उत्पादन गिर रहा था और खेती चौपट होने की दिशा में बढ़

चित्र 2 – बंगाल स्थित मुर्शिदाबाद का एक साप्ताहिक हाट।

ग्रामीण इलाकों के किसान और कारीगर अपनी चीज़ें बेचने और ज़रूरत की चीज़ें ख़रीदने के लिए नियमित रूप से बाज़ारों में आते थे। आर्थिक संकट के समय इन बाज़ारों पर बहुत बुरा असर पड़ता था।

चित्र 3 - चार्ल्स कॉर्नवॉलिस।

जिस समय स्थायी बंदोबस्त लागू किया गया उस समय कॉर्नवालिस भारत का गवर्नर-जनरल था।

स्रोत 1

बंगाल के रैयतों पर कोलब्रुक का कथन

बंगाल के बहुत सारे गाँवों में कई ताकतवर रैयत खुद खेती नहीं करते थे। वे औरों को पट्टे पर ज़मीन दे देते थे और उनसे भारी लगान वसूल करते थे। 1860 में एच.टी. कोलब्रुक ने इन काश्तकारों की स्थिति इन शब्दों में बयान की थी :

बटाई की भारी शर्तों और मवेशियों, बीज, आजीविका व कर्ज़ों के बदले बेगारी से दबे ये काश्तकार खुद को कर्ज़ से कभी बाहर नहीं निकाल सकते। जब उन्हें जीने को भी पूरा नहीं मिलता तो ऐसे भयानक हालात में वे दिल लगाकर काम कैसे कर सकते हैं। न ही उन्हें अपनी हालत सुधरने की कोई उम्मीद दिखायी देती है।

रही थी। 1770 में पड़े अकाल ने बंगाल में एक करोड़ लोगों को मौत की नींद सुला दिया। इस अकाल में लगभग एक तिहाई आबादी समाप्त हो गई।

खेती में सुधार की ज़रूरत

अगर अर्थव्यवस्था संकट में थी तो क्या कंपनी अपनी राजस्व आय के बारे में आश्वस्त रह सकती थी? कंपनी के ज़्यादातर अफ़सरों को यह लगने लगा था कि ज़मीन में निवेश करना और खेती में सुधार लाना ज़रूरी है।

यह काम किस तरह किया जा सकता था? इस सवाल पर दो दशकों तक बहस चली। आखिरकार कंपनी ने 1793 में स्थायी बंदोबस्त लागू किया। इस बंदोबस्त की शर्तों के हिसाब से राजाओं और तालुकदारों को ज़मींदारों के रूप में मान्यता दी गई। उन्हें किसानों से लगान वसूलने और कंपनी को राजस्व चुकाने का ज़िम्मा सौंपा गया। उनकी ओर से चुकाई जाने वाली राशि स्थायी रूप से तय कर दी गई थी। इसका मतलब यह था कि भविष्य में कभी भी उसमें इज़ाफा नहीं किया जाना था। अंग्रेज़ों को लगता था कि इससे उन्हें नियमित रूप से राजस्व मिलता रहेगा और ज़मींदारों को ज़मीन में सुधार के लिए खर्च करने का प्रोत्साहन मिलेगा। उन्हें लगता था कि क्योंकि राज्य की ओर से राजस्व की माँग बढ़ने वाली नहीं थी इसलिए ज़मींदार बढ़ते उत्पादन से फायदे में रहेंगे।

समस्या

मगर स्थायी बंदोबस्त ने भी समस्या पैदा कर दी। कंपनी के अफ़सरों ने पाया कि अभी भी ज़मींदार ज़मीन में सुधार के लिए खर्चा नहीं कर रहे थे। असल में, कंपनी ने जो राजस्व तय किया था वह इतना ज़्यादा था कि उसको चुकाने में ज़मींदारों को भारी परेशानी हो रही थी। जो ज़मींदार राजस्व चुकाने में विफल हो जाता था उसकी ज़मींदारी छीन ली जाती थी। बहुत सारी ज़मींदारियों को कंपनी बाकायदा नीलाम कर चुकी थी।

उन्नीसवीं सदी के पहले दशक तक हालात बदल चुके थे। बाज़ार में कीमतें बढ़ीं और धीरे-धीरे खेती का विस्तार होने लगा। इससे ज़मींदारों की आमदनी में तो सुधार आया लेकिन कंपनी को कोई फायदा नहीं हुआ क्योंकि कंपनी तो हमेशा के लिए राजस्व तय कर चुकी थी। अब वह राजस्व में वृद्धि नहीं कर सकती थी।

लेकिन ज़मींदारों को अभी भी ज़मीन की बेहतरी में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उनमें से कुछ तो बंदोबस्त के शुरुआती सालों में ही अपनी ज़मीन गँवा चुके थे। जो बचे रह गए थे अब उन्हें भी बिना परेशानी और निवेश का

गतिविधि

आपको ऐसा क्यों लगता है कि कोलब्रुक बंगाल के उप-पट्टेदारों की स्थिति पर इतने चिंतित हैं? पिछले पन्नों को पढ़कर संभावित कारण बताइए।

ख़तरा उठाए आमदनी की उम्मीद दिखाई दे रही थी। जब तक ज़मींदार किसानों को ज़मीन देकर उनसे लगान वसूल सकते थे उन्हें ज़मीन में सुधार की परवाह नहीं थी।

दूसरी तरफ, गाँवों में किसानों को यह व्यवस्था बहुत दमनकारी दिखाई दी। किसान को जो लगान चुकाना था वह बहुत ज़्यादा था और ज़मीन पर उसका अधिकार सुरक्षित नहीं था। लगान चुकाने के लिए अकसर महाजन से कर्ज़ा लेना पड़ता था। अगर वह लगान नहीं चुका पाता था तो उसे पुश्तैनी ज़मीन से बेदखल कर दिया जाता था।

महल – ब्रिटिश राजस्व दस्तावेज़ों में महल एक राजस्व इकाई थी। यह एक गाँव या गाँवों का एक समूह होती थी।

एक नयी व्यवस्था

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में ही कंपनी के बहुत सारे अधिकारियों को इस बात का यकीन हो चुका था कि राजस्व बंदोबस्त में दोबारा बदलाव लाना ज़रूरी है। जब कंपनी को शासन और व्यापार के अपने खर्चे चलाने के लिए और पैसे की ज़रूरत हो तो वह स्थायी रूप से राजस्व तय करके काम कैसे चला सकती है?

बंगाल प्रेज़िडेंसी के उत्तर-पश्चिमी प्रांतों (इस इलाके का ज़्यादातर हिस्सा अब उत्तर प्रदेश में है) के लिए होल्ट मैकेंजी नामक अंग्रेज़ ने एक नयी व्यवस्था तैयार की जिसे 1822 में लागू किया गया। मैकेंजी को विश्वास था कि उत्तर भारतीय समाज में गाँव एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है और उसको बचाए रखना चाहिए। उसके आदेश पर कलेक्टरों ने गाँव-गाँव का दौरा किया, ज़मीन की जाँच की, खेतों को मापा और विभिन्न समूहों के रीति-रिवाजों को दर्ज किया। गाँव के एक-एक खेत के अनुमानित राजस्व को जोड़कर हर गाँव या ग्राम समूह (**महाल**) से वसूल होने वाले राजस्व का हिसाब लगाया जाता था। इस राजस्व को स्थायी रूप से तय नहीं किया गया बल्कि उसमें समय-समय पर संशोधनों की गुंजाइश रखी गई। राजस्व इकट्ठा करने और उसे कंपनी को अदा करने का ज़िम्मा ज़मींदार की बजाय गाँव के मुखिया को सौंप दिया गया। इस व्यवस्था को *महालवारी* बंदोबस्त का नाम दिया गया।

चित्र 4 – मद्रास का गवर्नर टॉमस मुनरो (1819-26)।

मुनरो व्यवस्था

ब्रिटिश नियंत्रण वाले दक्षिण भारतीय इलाकों में भी स्थायी बंदोबस्त की जगह नयी व्यवस्था अपनाने का प्रयास किया जाने लगा। वहाँ जो नयी व्यवस्था विकसित हुई उसे *रैयतवार* (या रैयतवारी) का नाम दिया गया। कैप्टन एलेक्ज़ेंडर रीड ने टीपू सुल्तान के साथ चले युद्धों के बाद कंपनियों द्वारा कब्ज़े में लिए गए कुछ इलाकों में इस व्यवस्था को आज़मा कर भी देख लिया था। टॉमस मुनरो ने इस व्यवस्था को विकसित किया और धीरे-धीरे पूरे दक्षिणी भारत पर यही व्यवस्था लागू कर दी गई।

रीड और मुनरो को लगता था कि दक्षिण में परंपरागत ज़मींदार नहीं थे। इसलिए उनका तर्क यह था कि उन्हें सीधे किसानों (रैयतों) से ही बंदोबस्त करना चाहिए जो पीढ़ियों से ज़मीन पर खेती करते आ रहे हैं। राजस्व

गतिविधि

कल्पना कीजिए कि आप कंपनी के प्रतिनिधि की हैसियत से कंपनी शासन के अंतर्गत ग्रामीण इलाकों की दशा पर एक रिपोर्ट इंग्लैंड भेज रहे हैं। रिपोर्ट में आप क्या लिखेंगे?

आकलन से पहले उनके खेतों का सावधानीपूर्वक और अलग से सर्वेक्षण किया जाना चाहिए। मुनरो का मानना था कि अंग्रेज़ों को पिता की भाँति किसानों की रक्षा करनी चाहिए।

सब कुछ ठीक नहीं था

नयी व्यवस्थाएँ लागू होने के बाद महज़ कुछ साल के भीतर उनमें समस्याएँ दिखाई देने लगीं। ज़मीन से होने वाली आमदनी बढ़ाने के चक्कर में राजस्व अधिकारियों ने बहुत ज़्यादा राजस्व तय कर दिया था। किसान राजस्व चुका नहीं पा रहे थे। रैयत गाँवों से भाग रहे थे। बहुत सारे क्षेत्रों में गाँव वीरान हो गए थे। आशावादी अफ़सरों को उम्मीद थी कि नयी व्यवस्था किसानों को संपन्न उद्यमशील किसान बना देगी। लेकिन ऐसा हुआ नहीं।

यूरोप के लिए फ़सलें

अंग्रेज़ों ने यह भी महसूस किया कि ग्रामीण इलाके न केवल राजस्व प्रदान कर सकते हैं बल्कि वहाँ यूरोप की ज़रूरतों के हिसाब से सही फ़सलें भी पैदा की जा सकती हैं। अठाहरवीं सदी के आखिर तक कंपनी ने अफ़ीम और नील की खेती पर पूरा ज़ोर लगा दिया था। इसके बाद लगभग 150 साल तक अंग्रेज़ देश के विभिन्न भागों में किसी न किसी फ़सल के लिए किसानों को मजबूर करते रहे : बंगाल में पटसन, असम में चाय, संयुक्त प्रांत (वर्तमान उत्तर प्रदेश) में गन्ना, पंजाब में गेहूँ, महाराष्ट्र व पंजाब में कपास, मद्रास में चावल।

यह कैसे किया गया? अंग्रेज़ों ने अपनी ज़रूरत की फ़सलों की खेती को फैलाने के लिए कई तरीके अपनाए। आइए इसी तरह की एक फ़सल, उत्पादन की ऐसी ही एक पद्धति को अच्छी तरह समझें।

चित्र 5 – एक क़लमकारी छापा, बीसवीं सदी, भारत।

चित्र 6 – मॉरिस कॉटन छापा, उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्ध, इंग्लैंड।

क्या रंग का भी कोई इतिहास है?

चित्र 5 और 6 में सूती कपड़े के छापों की दो तसवीरें दी गई हैं। बाईं तरफ (चित्र 5) की तसवीर में भारत में आंध्र प्रदेश के बुनकरों द्वारा बनाए गए कलमकारी छापे दिखाई दे रहे हैं। दूसरी तरफ ब्रिटेन के प्रसिद्ध कवि और कलाकार विलियम मॉरिस द्वारा बनाए गए फूल वाले छापे हैं। दोनों छापों में एक बात समान है : दोनों में ही गहरे नीले रंग का

इस्तेमाल किया गया है। इसे आमतौर पर नील कहा जाता है। क्या आप जानते हैं कि यह रंग किस तरह पैदा किया गया?

इन छापों में आपको जो नीला रंग दिखाई दे रहा है वह नील नाम के एक पौधे से निकाला जाता था। इस बात की काफ़ी संभावना है कि उन्नीसवीं सदी के ब्रिटेन में मॉरिस के छापों में इस्तेमाल किया गया नीला रंग भारत में उगने वाले नील के पौधों से ही तैयार किया गया होगा। उस समय भारत दुनिया में नील का सबसे बड़ा स्रोत था।

भारतीय नील की माँग क्यों थी?

नील का पौधा मुख्य रूप से उष्णकटिबंधीय इलाकों में ही उगता है। तेरहवीं सदी तक इटली, फ़्रांस और ब्रिटेन के कपड़ा उत्पादक कपड़े की रँगाई के लिए भारतीय नील का इस्तेमाल कर रहे थे।

उस समय भारतीय नील की बहुत थोड़ी मात्रा ही यूरोपीय बाज़ारों में पहुँचती थी। उसकी कीमत भी बहुत ऊँची रहती थी। इसीलिए यूरोपीय कपड़ा उत्पादकों को बैंगनी और नीले रंग बनाने के लिए वोड नामक एक और पौधे पर निर्भर रहना पड़ता था। वोड पौधा शीतोष्ण क्षेत्र में उगता था इसलिए यूरोप में आसानी से मिल जाता था। उत्तरी इटली, दक्षिणी फ़्रांस व जर्मनी और ब्रिटेन के कई हिस्सों में यह पौधा उगता था। नील के साथ प्रतिस्पर्धा से परेशान यूरोप के वोड उत्पादकों ने अपनी सरकारों पर दबाव डाला कि वे नील के आयात पर पाबंदी लगा दें।

मगर कपड़े को रँगने वाले तो नील को ही पसंद करते थे। नील से बहुत चमकदार नीला रंग मिलता था जबकि वोड से मिलने वाला रंग बेजान और फीका होता था। सत्रहवीं सदी तक आते-आते यूरोपीय कपड़ा उत्पादकों ने नील के आयात पर लगी पाबंदी में ढील देने के लिए अपनी सरकारों को राज़ी कर लिया। कैरीबियाई द्वीप समूह स्थित सेंट डॉमिंग्यू में फ़्रांसीसी, ब्राज़ील में पुर्तगाली, जमैका में ब्रिटिश और वेनेज़ुएला में स्पैनिश लोग नील की खेती करने लगे। उत्तरी अमेरिका के भी बहुत सारे भागों में नील के **बाग़ान** सामने आ गए थे।

बाग़ान – एक विशाल खेत जिस पर बाग़ान मालिक बहुत सारे लोगों से जबरन काम करवाता था। कॉफ़ी, गन्ना, तंबाकू, चाय और कपास आदि के विषय में बाग़ानों का ज़िक्र किया जाता है।

अठारहवीं शताब्दी के आखिर तक भारतीय नील की माँग और बढ़ गई। ब्रिटेन में औद्योगीकरण का युग शुरू हो चुका था और उसके कपास उत्पादन में भारी इज़ाफ़ा हुआ। अब कपड़ों की रँगाई की माँग और तेज़ी से बढ़ने लगी। जब नील की माँग बढ़ी उसी दौरान वेस्टइंडीज़ और अमेरिका से मिलने वाली आपूर्ति अनेक कारणों से बंद हो गई। 1783 से 1789 के बीच दुनिया का नील उत्पादन आधा रह गया था। ब्रिटेन के रँगरेज़ अब नील की आपूर्ति के लिए बैचेनी से किसी और स्रोत की तलाश कर रहे थे।

यह नील कहाँ से मिल सकता था?

भारत में ब्रिटेन की बढ़ती दिलचस्पी

यूरोप में नील की बढ़ती माँग को देखते हुए ईस्ट इंडिया कंपनी भी भारत में नील की खेती बढ़ाने के रास्ते ढूँढ़ने लगी।

चित्र 7 - सेंट डॉमिंग्यू में गुलामों की बगावत, अगस्त 1791, जनवरी स्कुहदोल्स्की का चित्र।

अठाहरवीं सदी में फ़्रांसीसी बाग़ान मालिकों ने कैरीबियाई द्वीप समूह में स्थित फ़्रांसीसी उपनिवेश सेंट डॉमिंग्यू में नील और चीनी का उत्पादन शुरू किया। इन बाग़ानों में काम करने वाले अफ़्रीकी **गुलाम** 1791 में बगावत पर उतर आए। उन्होंने बाग़ान जला दिए और अपने धनी मालिकों को मार डाला। 1792 में फ़्रांस ने अपने उपनिवेशों में दास प्रथा समाप्त कर दी। इन घटनाओं की वजह से कैरीबियाई द्वीपों में नील की खेती ठप्प हो गई।

अठाहरवीं सदी के आखिरी दशकों से ही बंगाल में नील की खेती तेज़ी से फैलने लगी थी। बंगाल में पैदा होने वाला नील दुनिया के बाज़ारों पर छा गया था। 1788 में ब्रिटेन द्वारा आयात किए गए नील में भारतीय नील का हिस्सा केवल लगभग 30 प्रतिशत था। 1810 में ब्रिटेन द्वारा आयात किए गए नील में भारतीय नील का हिस्सा 95 प्रतिशत हो चुका था।

जैसे-जैसे नील का व्यापार फैला, कंपनी के अफ़सर और व्यावसायिक एजेंट नील के उत्पादन में पैसा लगाने लगे। समय बीतने के साथ कंपनी के बहुत सारे अधिकारियों ने नील के अपने कारोबार पर ध्यान देने के लिए अपनी नौकरियाँ छोड़ दीं। भारी मुनाफ़े की उम्मीद में स्कॉटलैंड और इंग्लैंड के बहुत सारे लोग भारत आए और उन्होंने नील के बाग़ान लगा लिए। जिनके पास नील की पैदावार के लिए पैसा नहीं था उन्हें कंपनी और नए-नए बैंक कर्ज़ा देने को तैयार रहते थे।

नील की खेती कैसे होती थी?

नील की खेती के दो मुख्य तरीके थे – *निज* और *रैयती*। *निज* खेती की व्यवस्था में बाग़ान मालिक खुद अपनी ज़मीन में नील का उत्पादन करते थे। या तो वह ज़मीन ख़रीद लेते थे या दूसरे ज़मींदारों से ज़मीन भाड़े पर ले लेते थे और मज़दूरों को काम पर लगाकर नील की खेती करवाते थे।

निज खेती की समस्याएँ

बाग़ान मालिकों को *निज* खेती का क्षेत्रफल फैलाने में मुश्किल आ रही थी। नील की खेती केवल उपजाऊ ज़मीन पर की जा सकती थी। ऐसी ज़मीनों पर आबादी पहले ही बहुत ज़्यादा थी। यहाँ-वहाँ छोटे-मोटे खेत ही उनके हाथ लग पाते थे। नील की खेती करने के लिए उन्हें बड़े-बड़े भूखण्डों की ज़रूरत थी। इस तरह की ज़मीनें उन्हें कहाँ से मिल सकती थीं? उन्होंने नील की फैक्ट्री के इर्द-गर्द पट्टे पर ज़मीन लेने के प्रयास किए और वहाँ के किसानों को हटवा दिया। इससे टकराव और तनाव पैदा हो जाता था।

मज़दूरों का इंतज़ाम करना भी आसान नहीं था। बड़े बाग़ान के लिए बहुत सारे मज़दूरों की ज़रूरत होती थी। मज़दूरों की ज़रूरत भी सबसे ज़्यादा उसी समय होती थी जब किसान धान की खेती में व्यस्त रहते थे।

बड़े पैमाने पर *निज* खेती के लिए बहुत सारे हल-बैलों की भी ज़रूरत

गुलाम - ऐसा व्यक्ति जो किसी दास-स्वामी की संपत्ति होता है। गुलाम के पास कोई आज़ादी नहीं होती, उसे अपने मालिक के लिए काम करना होता है।

थी। एक बीघा नील की खेती के लिए दो हल चाहिए होते थे। इसका मतलब यह था कि अगर किसी बाग़ान मालिक के पास एक हज़ार **बीघा** ज़मीन है तो उसे दो हज़ार हलों की ज़रूरत पड़ती। हलों को ख़रीदना और उनका रखरखाव एक बड़ी समस्या थी। किसानों से भी हल नहीं मिल सकते थे। उन्हें अपने लिए ही इन चीज़ों की ज़रूरत होती थी। जिस समय नील उत्पादकों को ज़रूरत होती थी उसी समय किसानों के हल-बैल भी चावल के खेतों में व्यस्त रहते थे।

बीघा - ज़मीन की एक माप। ब्रिटिश शासन से पहले बीघे का आकार अलग-अलग होता था। बंगाल में अंग्रेज़ों ने इसका क्षेत्रफल करीब एक तिहाई एकड़ तय कर दिया था।

उन्नीसवीं सदी के आखिर तक बाग़ान मालिक *निज* खेती का क्षेत्रफल फैलाने में हिचकिचाते थे। इस व्यवस्था के तहत नील की पैदावार वाली 25 प्रतिशत से भी कम ज़मीन आती थी। बाकी ज़मीन *रैयती* व्यवस्था के अंतर्गत थी।

रैयतों की ज़मीन पर नील की खेती

रैयती व्यवस्था के तहत बाग़ान मालिक *रैयतों* के साथ एक अनुबंध (सट्टा) करते थे। कई बार वे गाँव के मुखियाओं को भी *रैयतों* की तरफ से समझौता करने के लिए बाध्य कर देते थे। जो अनुबंध पर दस्तखत कर देते थे उन्हें नील उगाने के लिए कम ब्याज दर पर बाग़ान मालिकों से नक़द कर्ज़ा मिल जाता था। कर्ज़ा लेने वाले *रैयत* को अपनी कम से कम 25 प्रतिशत ज़मीन पर नील की खेती करनी होती थी। बाग़ान मालिक बीज और उपकरण मुहैया कराते थे जबकि मिट्टी को तैयार करने, बीज बोने और फ़सल की देखभाल करने का ज़िम्मा काश्तकारों के ऊपर रहता था।

चित्र 8 - उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में बंगाल के मज़दूर नील की खेती करते हुए।

भारत में नील के पौधों की कटाई अधिकांशतः पुरुष ही करते थे।

जब कटाई के बाद फ़सल बाग़ान मालिक को सौंप दी जाती थी तो *रैयत* को नया कर्ज़ा मिल जाता था और वही चक्र दोबारा

चित्र 9 - खेतों से फ़ैक्ट्री में लाए जा रहे नील के पौधों के गट्ठर।

नील का उत्पादन कैसे होता था?

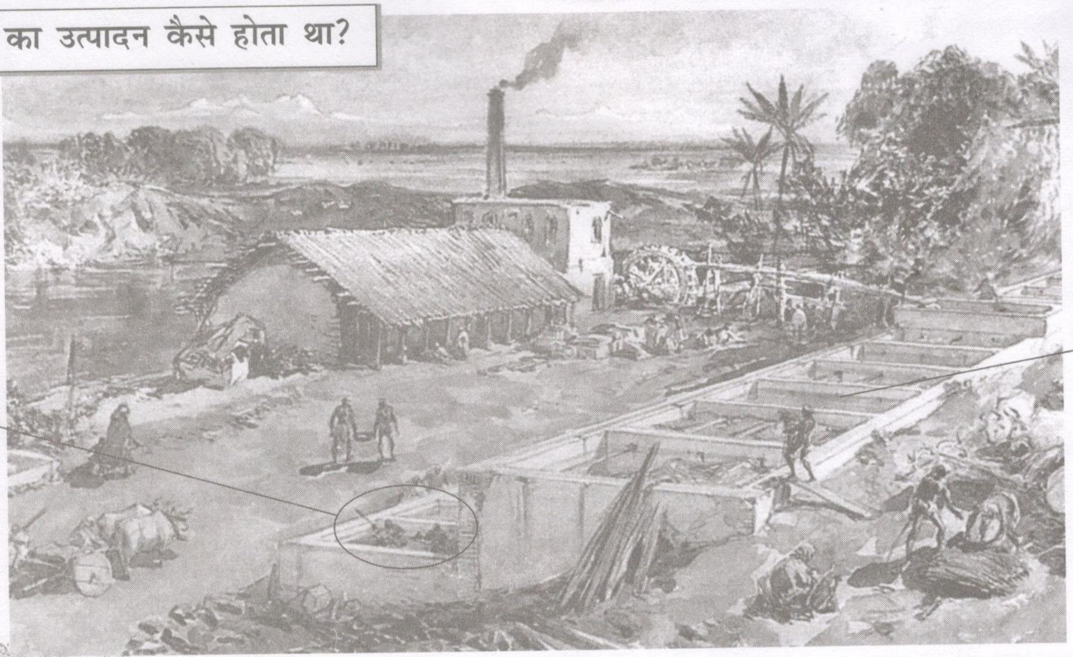

चित्र 10 - नील के खेतों के पास स्थित नील का एक कारखाना, विलियम सिंप्सन का चित्र, 1863.

नील गाँव आमतौर पर बाग़ान मालिकों की फैक्ट्रियों के आस-पास ही होते थे। कटाई के बाद नील के पौधों को कारखाने में स्थित **वैटस** (हौद) में पहुँचा दिया जाता था। रंग बनाने के लिए 3 या 4 कुंडों की ज़रूरत पड़ती थी। प्रत्येक हौद का अलग काम था। नील के पौधों से पत्तियों को तोड़कर पहले एक कुंड में गर्म पानी में कई घंटों तक डुबोया जाता था (इस हौद को किणवन या स्टीपर कुंड कहा जाता था)। जब पौधे किणवित हो जाते थे तो द्रव्य में बुलबुले उठने लगते थे। अब सड़ी हुई पत्तियों को निकाल दिया जाता था और द्रव्य को एक और हौद में छान दिया जाता था। दूसरा हौद पहले हौद के ठीक नीचे होता था।

दूसरे हौद (बीटर वाट) में इस घोल को लगातार हिलाया जाता था और पैडलों से खंगाला जाता था। जब यह द्रव्य हरा और उसके बाद नीला हो जाता था तो हौद में चूने का पानी डाला जाता था। धीरे-धीरे नील की पपड़ियाँ नीचे जम जाती थीं और ऊपर साफ द्रव्य निकल आता था। द्रव्य को छानकर अलग कर लिया जाता था और नीचे जमी नील की गाद - नील की लुगदी - को दूसरे कुंड (निथारन कुंड) में डाल दिया जाता था। इसके बाद उसे निचोड़कर बिक्री के लिए सुखा दिया जाता था।

चित्र 11 - नील के पौधों को हौद तक औरतें ही ढोकर लाती थीं।

चित्र 12 - हौद में घोल हिलाने वाला

यहाँ खड़ा नील मज़दूर हौद में पड़े घोल को हिलाने के लिए इस्तेमाल होने वाला पैडल लिए खड़ा है। इन मज़दूरों को 8 घंटे से भी ज़्यादा समय तक कमर तक भरे नील के घोल में खड़े रहना पड़ता था।

वाट - एक किणवन अथवा संग्रहण पात्र

चित्र 13 - बिक्री के लिए नील तैयार है।

यहाँ आप उत्पादन की आखिरी अवस्था को देख सकते हैं। दबाकर साँचों में डाल दी गई नील की लुगदी को काटकर मज़दूर उन पर मुहर लगा रहे हैं। पीछे वाले हिस्से में एक मज़दूर इन टुकड़ों को सुखाने के लिए ले जा रहा है।

शुरू हो जाता था। जो किसान पहले इन कर्ज़ों से बहुत आकर्षित थे उन्हें जल्दी ही समझ में आ गया कि यह व्यवस्था कितनी कठोर है। उन्हें नील की जो कीमत मिलती थी वह बहुत कम थी और कर्ज़ों का सिलसिला कभी खत्म ही नहीं होता था।

समस्याएँ और भी थीं। बाग़ान मालिक चाहते थे कि किसान अपने सबसे बढ़िया खेतों में ही नील की खेती करें। लेकिन नील के साथ परेशानी यह थी कि उसकी जड़ें बहुत गहरी होती थीं और वह मिट्टी की सारी ताकत खींच लेती थीं। नील की कटाई के बाद वहाँ धान की खेती नहीं की जा सकती थी।

"नील विद्रोह" और उसके बाद

मार्च 1859 में बंगाल के हज़ारों *रैयतों* ने नील की खेती से इनकार कर दिया। जैसे-जैसे विद्रोह फैला, *रैयतों* ने बाग़ान मालिकों को लगान चुकाने से भी इनकार कर दिया। वे तलवार, भाले और तीर-कमान लेकर नील की फैक्ट्रियों पर हमला करने लगे। औरतें अपने बर्तन लेकर लड़ाई में कूद पड़ीं। बाग़ान मालिकों के लिए काम करने वालों का सामाजिक बहिष्कार कर दिया गया। बाग़ान मालिकों की तरफ़ से लगान वसूली के लिए आने वाले गुमाश्ता - एजेंटों - की पिटाई की गई। *रैयतों* ने कसम खा ली कि न तो वे नील की खेती के लिए कर्ज़ा लेंगे और न ही बाग़ान मालिकों के लठियालों - लाठीधारी गुंडों - से डरेंगे।

नील के किसान चुप बैठने को तैयार नहीं थे। क्यों? उन्हें बग़ावत की ताकत कहाँ से मिली? इसमें कोई शक नहीं कि नील की खेती अत्यन्त दमनात्मक थी। लेकिन जो लोग दबे होते हैं वे हमेशा बगावत नहीं करते। ऐसा कभी-कभी ही होता है।

1859 में नील *रैयतों* को लगा कि बाग़ान मालिकों के ख़िलाफ़ बग़ावत में उन्हें स्थानीय ज़मींदारों और मुखियाओं का भी समर्थन मिल सकता है। बहुत सारे गाँवों में जिन मुखियाओं से नील के अनुबंधों पर जबरन दस्तखत कराए गए थे उन्होंने ही नील किसानों को इकट्ठा किया और लठियालों के साथ आमने-सामने की लड़ाई लड़ी। कई स्थानों पर *रैयतों* को बग़ावत के लिए उकसाते हुए खुद ज़मींदार गाँव-गाँव घूमने लगे। ज़मींदार इस बात से परेशान थे कि बाग़ान मालिकों की ताकत बढ़ती जा रही थी और बाग़ान मालिक जबरन लंबे समय के लिए उनसे ज़मीन ले लेते थे।

नील के किसानों को ये भी लग रहा था कि अंग्रेज़ी सरकार भी संघर्ष में उनका साथ देगी। 1857 की बग़ावत के बाद ब्रिटिश सरकार एक और व्यापक विद्रोह के ख़तरे से डरी हुई थी। जब नील की खेती वाले ज़िलों में एक और बग़ावत की ख़बर फैली तो लेफ़्टिनेंट गवर्नर ने 1859 की सर्दियों में इलाके का दौरा किया। *रैयतों* को लगा कि सरकार उनकी दुर्दशा से परेशान है। बरसात में मजिस्ट्रेट ऐशले ईडन ने एक नोटिस जारी किया जिसमें कहा गया था कि *रैयतों* को नील के अनुबंध मानने के लिए मजबूर नहीं किया

स्रोत 2

नील गाँवों का एक गीत

संघर्ष के क्षणों में लोग एक-दूसरे का उत्साह बढ़ाने और सामूहिकता का भाव पैदा करने के लिए अकसर गीत गाते हैं। इस तरह के गीतों से हमें उनकी भावनाओं का पता चलता है। नील विद्रोह के दौरान बंगाल के निचले इलाकों में ऐसे बहुत सारे गीत सुनाई देते थे। इनमें से एक गीत इस प्रकार था :

मौला हाती के बाग़ान
मालिक की लम्बी-लम्बी
लाठियाँ दूर इकट्ठी पड़ी
हैं।

कोलकाता के बाबू इस
बड़ी लड़ाई को देखने के
लिए नावों के जरिये पहुँच
चुके हैं।

इस बार तो सभी *रैयत*
तैयार हैं, वे चुपचाप मार
नहीं सहेंगे।

अब वे बिना लठियालों
का मुकाबला किये अपनी
जान नहीं गँवाएँगे।

जाएगा। इस नोटिस के आधार पर लोगों में यह ख़बर फैल गई कि रानी विक्टोरिया ने नील की खेती न करने का हुक्म दे दिया है। ईडन किसानों को शांत करने और विस्फोटक स्थितियों को नियंत्रित करने की कोशिश कर रहे थे। उसकी कार्रवाई को किसानों ने अपने विद्रोह का समर्थन मान लिया।

जैसे-जैसे विद्रोह फैला, कलकत्ता के पढ़े-लिखे लोग भी नील ज़िलों की ओर चल पड़े। उन्होंने *रैयतों* की दुर्दशा, बाग़ान मालिकों की ज़ोर-ज़बर्दस्ती और अत्याचारी नील व्यवस्था के बारे में लिखा।

इस बग़ावत से परेशान सरकार को बाग़ान मालिकों की रक्षा के लिए सेना बुलानी पड़ी। नील उत्पादन व्यवस्था की जाँच करने के लिए एक नील आयोग भी बना दिया गया। इस आयोग ने बाग़ान मालिकों को दोषी पाया, ज़ोर-ज़बर्दस्ती के लिए उनकी आलोचना की। आयोग ने कहा कि नील की खेती *रैयतों* के लिए फायदे का सौदा नहीं है। आयोग ने *रैयतों* से कहा कि वे मौजूदा अनुबंधों को पूरा करें लेकिन आगे से वे चाहें तो नील की खेती बंद कर सकते हैं।

इस बगावत के बाद बाग़ानों में नील का उत्पादन धराशायी हो गया। इसके बाद बाग़ान मालिक बिहार पर ध्यान देने लगे। उन्नीसवीं सदी के आखिर में कृत्रिम रंगों का निर्माण होने लगा था। इससे उनका व्यवसाय भी बुरी तरह प्रभावित हुआ। फिर भी, वे उत्पादन फैलाने में सफल रहे। जब महात्मा गांधी दक्षिण अफ़्रीका से लौटे तो बिहार के एक किसान ने उन्हें चंपारण आकर नील किसानों की दुर्दशा को देखने का न्यौता दिया। 1917 में महात्मा गांधी का यह दौरा नील बाग़ान मालिकों के ख़िलाफ़ चंपारण आंदोलन की शुरुआत थी।

स्रोत 3

भीख माँग लूँगा परन्तु "नील नहीं उगाऊँगा"

चाँदपुर, थाना हरदी के एक नील काश्तकार हाजी मुल्ला से मंगलवार 5 जून 1860 को नील आयोग के सदस्यों ने बात की। हाजी मुल्ला ने कुछ सवालों के जवाब इस तरह दिए :

डब्ल्यू.एस. सीटन कार, नील आयोग के अध्यक्ष : क्या अब तुम नील की खेती के लिए तैयार हो? अगर नहीं, तो किस तरह की शर्तों पर खेती करना चाहोगे?

हाजी मुल्ला : मैं नील उगाने को तैयार नहीं हूँ। मुझे नहीं पता कि कोई भी नयी शर्तें मुझे संतुष्ट कर सकती हैं।

श्री साले : क्या तुम एक रुपया प्रति बंडल की कीमत पर भी खेती नहीं करना चाहते?

हाजी मुल्ला : नहीं, मैं नहीं करूँगा। नील उगाने की बजाय मैं कहीं और चला जाऊँगा। भीख माँग लूँगा परन्तु नील नहीं उगाऊँगा।

नील आयोग रिपोर्ट, खंड 2, सबूतनामा, पृ. 67

गतिविधि

कल्पना कीजिए कि आप नील आयोग के सामने गवाही दे रहे हैं। डब्ल्यू.एस. सीटन कार आपसे पूछते हैं : "*रैयत* किस सूरत में नील की खेती कर सकते हैं?" आपका जवाब क्या होगा?

अन्यत्र

वेस्टइंडीज़ में नील उत्पादन

अठारहवीं सदी की शुरुआत में एक फ़्रांसीसी मिशनरी जौं बेपतिस्त लबात ने कैरीबियाई द्वीपों का दौरा किया और इस इलाके के बारे में विस्तार से लिखा। यह तसवीर लबात की एक पुस्तक से ली गई है। इस तसवीर में यहाँ के फ़्रांसीसी बाग़ानों में नील उत्पादन के सारे चरणों को दर्शाया गया है। बाएँ सिरे पर आप देख सकते हैं कि गुलाम मज़दूर नील के पौधों को सेटलर वाट में डाल रहे हैं। एक और मज़दूर एक मशीनी चरखी से घोल को घुमा रहा है (दाएँ से दूसरा)। दो मज़दूर नील की लुगदी को बोरों में भरकर सुखाने के लिए ले जा रहे हैं। अगले हिस्से में दो मज़दूर नील की लुगदी को मिलाकर साँचों में डालने के लिए तैयार कर रहे हैं। तसवीर के बीचोंबीच बाग़ान मालिक ऊँची जगह खड़े होकर सारे गुलामों पर नज़र रख रहा है।

चित्र 14 – कैरिबियाई द्वीप समूह स्थित बाग़ानों में नील का उत्पादन।

फिर से याद करें

1. निम्नलिखित के जोड़े बनाएँ

रैयत	ग्राम-समूह
महाल	किसान
निज	*रैयतों* की ज़मीन पर खेती
रैयती	बाग़ान मालिकों की अपनी ज़मीन पर खेती

2. रिक्त स्थान भरें :

(क) यूरोप में वोड उत्पादकों को .... से अपनी आमदनी में गिरावट का ख़तरा दिखाई देता था।

(ख) अठारहवीं सदी के आखिर में ब्रिटेन में नील की माँग .... के कारण बढ़ने लगी।

आइए कल्पना करें

एक किसान को नील की खेती के लिए मजबूर किया जा रहा है। बाग़ान मालिक और उस किसान के बीच बातचीत की कल्पना कीजिए। किसान को राज़ी करने के लिए बग़ान मालिक क्या कारण बताएगा? किसान किन समस्याओं का ज़िक्र करेगा? इस बातचीत को अभिनय के ज़रिए दिखाएँ।

(ग) .... की खोज से नील की अंतर्राष्ट्रीय माँग पर बुरा असर पड़ा।

(घ) चंपारण आंदोलन .... के ख़िलाफ़ था।

आइए विचार करें

3. स्थायी बंदोबस्त के मुख्य पहलुओं का वर्णन कीजिए।
4. महालवारी व्यवस्था स्थायी बंदोबस्त के मुकाबले कैसे अलग थी?
5. राजस्व निर्धारण की नयी मुनरो व्यवस्था के कारण पैदा हुई दो समस्याएँ बताइए।
6. *रैयत* नील की खेती से क्यों कतरा रहे थे?
7. किन परिस्थितियों में बंगाल में नील का उत्पादन धराशायी हो गया?

आइए करके देखें

8. चंपारण आंदोलन और उसमें महात्मा गांधी की भूमिका के बारे में और जानकारियाँ इकट्ठा करें।
9. भारत के शुरुआती चाय या कॉफी बाग़ानों का इतिहास देखें। ध्यान दें कि इन बाग़ानों में काम करने वाले मज़दूरों और नील के बाग़ानों में काम करने वाले मज़दूरों के जीवन में क्या समानताएँ या फर्क थे।